धर्म निरपेक्षता और बौद्धधर्म

वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम स्वरूप आज हमारा विश्व सिमट गया है। विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न धर्मों के लोग आज एक दूसरे के निकट सम्पर्क में हैं। साथ ही वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति के कारण और विशिष्टीकरण से हम परस्पराश्रित हो गये हैं। आज किसी भी धर्म और संस्कृति के लोग दूसरे धर्मों और संस्कृतियों से निरपेक्ष होकर जीवन नहीं जी सकते। हमारा दुर्भाग्य यह है कि इस परिवेशजन्य निकटता और पारस्परिक निर्भरता के बावजूद आज मनुष्य मनुष्य के बीच हृदय की दूरियां बढ़ती जा रही हैं। वैयक्तिक या राष्ट्रीय स्वार्थलिप्सा एवं महत्त्वाकांक्षा के कारण हम एक-दूसरे से कटते चले जा रहे हैं। धर्मों और धार्मिक सम्प्रदायों के संघर्ष बढ़ते जा रहे हैं और मनुष्य आज भी धर्म के नाम पर दमन, अत्याचार, नृशंसता और रक्तप्लावन का शिकार हो रहा है। एक धर्म और एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे धर्म और सम्प्रदाय को मटियामेट करने पर तुले हुए हैं। इन सब परिस्थितियों में आज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्मनिरपेक्षता का प्रश्न अत्यन्त प्रासङ्गिक हो गया है। धर्मनिरपेक्षता से ही धर्मों के नाम पर होने वाली इन सब दुर्घटनाओं से मानवता को बचाया जा सकता है।

इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम हमें यह विचार करना होगा कि धर्मनिरपेक्षता से हमारा क्या तात्पर्य है? वस्तुत: धर्मनिरपेक्षता को अंग्रेजी शब्द 'सेक्युलरिज्म' का हिन्दी पर्यायावाची मान लिया गया है। हम अक्सर 'सेक्युलर स्टेट' की बात करते हैं। यहाँ हमारा तात्पर्य ऐसे राज्य/राष्ट्र से होता है जो किसी धर्म विशेष को राष्ट्रीय धर्म के रूप में स्वीकार नहीं करके अपने राष्ट्र में प्रचलित सभी धर्मों को अपनी-अपनी साधना पद्धति को अपनाने की स्वतन्त्रता, अपने विकास के समान अवसर और सभी के प्रति समान आदर भाव प्रदान करता है। अत: राष्ट्रीय नीति के सन्दर्भ में 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ धर्मविहीनता नहीं अपितु किसी धर्म विशेष को प्रमुखता न देकर, सभी धर्मों के प्रति समव्यवहार है। जो लोग धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म अथवा नीति विहीनता करते हैं, वे भी एक भ्रान्त धारणा को प्रस्तुत करते हैं। कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र धर्मविहीन नहीं हो सकता, क्योंकि धर्म एक जीवनशैली है। सेक्युलरिज्म या धर्मनिरपेक्षता के लिए महात्मा गांधी ने हमें 'सर्वधर्म समभाव' शब्द दिया था, जो अधिक महत्त्वपूर्ण और सार्थक है। सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मों की सापेक्षिक मूल्यवत्ता को स्वीकार करते हुए उनके विकास के समान अवसर प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता है। इसका तात्पर्य है कि धार्मिक दुर्भिनिवेश एवं मताग्रह से मुक्त होना ही दृष्टि की परिवासना से मुक्त होना है। वह किसी दृष्टि/कर्मकाण्ड/उपासना पद्धति से बंधना नहीं है। इसी प्रकार 'धर्म' शब्द भी अनेक अर्थ में प्रयुक्त होता है। वह एक ओर वस्तुस्वरूप का सूचक है तो दूसरी ओर कर्तव्य और किसी साधना या उपासना की पद्धति विशेष का भी सूचक है। अत: जब हम धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा के सन्दर्भ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग करें, तो हमें उसके अर्थ के सम्बन्ध में स्पष्टता रखनी होगी। प्रस्तुत सन्दर्भ में धर्म का अर्थ न स्वभाव है, न कर्तव्य और न सदाचरण है। धर्म निरपेक्षता के सन्दर्भ में 'धर्म' शब्द आध्यात्मिक साधना और उपासना की पद्धति विशेष का परिचायक है, जो किसी सीमा तक नीति और आचार के विशेष नियमों से भी जुड़ा है। अत: धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य उपासना या साधना की विभिन्न पद्धतियों की सापेक्षिक सत्यता और मूल्यवत्ता को स्वीकार करना है। संक्षेप में किसी एक धर्म/सम्प्रदाय/कर्मकाण्ड या उपासना की पद्धति के प्रति प्रतिबद्ध न होकर साधना और उपासना की सभी पद्धतियों को विकसित होने एवं जीवित रहने का समान अधिकार प्रदान करना ही धर्मनिरपेक्षता है।

जब हम बौद्धधर्म के सन्दर्भ में इस धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा पर विचार करते हैं तो हमें इस तथ्य को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि बौद्धधर्म भी एक धर्मविशेष ही है, अत: उसमें धर्मनिरपेक्षता का वह अर्थ नहीं है जिसे सामान्यतया हम स्वीकार करते हैं। उसमें धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य दूसरे धर्मों के प्रति समादर भाव से अधिक नहीं है। यह भी सत्य है कि बौद्धधर्म में अन्य धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं की उसी प्रकार समीक्षा की गई है जिस प्रकार अन्य धर्मों एवं दर्शनों में बौद्धधर्म की गई थी। फिर भी बौद्धधर्म में सर्वधर्मसमभाव एवं धार्मिक सहिष्णुता के पर्याप्त आधार हैं।

भारतीय संस्कृति और भारतीय चिन्तन प्रारम्भ से ही उदारवादी और समन्वयवादी रहा है। भारतीय चिन्तन की इसी उदारता एवं समन्वयवादिता के परिणामस्वरूप हिन्दूधर्म विभिन्न साधना और उपासना की पद्धतियों का एक ऐसा संग्रहालय बन गया कि आज कोई भी विद्वान हिन्दू धर्म की सुनिश्चित परिभाषा देने में असफल हो जाता है। उपासना एवं कर्मकाण्ड की आदिम प्रवृत्तियों से लेकर अद्वैत वेदान्त का श्रेष्ठतम दार्शनिक सिद्धान्त उसमें समाहित है। प्रकृति पूजा के विविध रूपों से लेकर निर्गुण-साधना का विकसित रूप उसमें परिलक्षित होता है। उसकी धार्मिक समन्वयशीलता हमारे सामने एक अद्वितीय आदर्श उपस्थित करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय चिन्तनधारा का ही अंग होने के कारण बौद्धधर्म भी अपने प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक धार्मिक समन्वयशीलता और सर्वधर्मसमभाव का आदर्श प्रस्तुत करता रहा है। क्योंकि उसने प्रतिद्वन्दी धर्मों को शक्ति के बल पर समाप्त करने का कभी प्रयत्न नहीं किया। एक ओर उसकी इस समन्वयवादिता का परिणाम यह हुआ कि वह व्यापक हिन्दू धर्म में आत्मसात् होकर भारत में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं रख सका, किन्तु दूसरी ओर उसने अपनी इस समन्वयवादिता के परिणामस्वरूप विश्व के धर्मों में शीर्षस्थ स्थान प्राप्त कर लिया और भारत के बाहर भूटान, तिब्बत, चीन, वियतनाम, जापान, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, बर्मा, लंका आदि देशों में उनकी संस्कृतियों से समन्वय साधते हुए अपने अस्तित्व का विस्तार कर लिया है। यहां हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि बौद्धधर्म नें अपना विस्तार सत्ता और शक्ति के बल पर नहीं किया है। बौद्धधर्म की उदार और समन्वयशील दृष्टि का ही यह परिणाम था कि वह जिस देश में गया वहां के आचार-विचार और नीति व्यवहार को, वहां के देवी-देवताओं को इस प्रकार से समन्वित कर लिया कि उन देशों के लिए वह एक बाहरी धर्म न रहकर उनका अपना ही अंग बन गया । इस प्रकार वह विदेश की भूमि में भी विदेशी नहीं रहा। यह उसकी समन्वयवादिता ही थी, जिसके कारण वह विदेशी भूमि में अपने को खड़ा रख सका।

बौद्धधर्म में धर्मनिरपेक्षता का आधार-दृष्टिराग का प्रहाण

धर्मनिरपेक्षता या सर्वधर्मसमभाव की अवधारणा तभी बलवती होती है जब व्यक्ति अपने को आग्रह और मतान्धता के घेरे से ऊपर उठा सके। आग्रह और मतान्धता से ऊपर उठने के लिए बौद्धधर्म में दृष्टिराग (दिट्ठी परिवासना) का स्पष्टरूप से निषेध किया गया है। बौद्धधर्म और साधना पद्धति की अनिवार्य शर्त यह है कि व्यक्ति अपने को दृष्टिराग से ऊपर उठाये, क्योंकि बौद्ध परम्परा में दृष्टिराग को ही मिथ्यादृष्टि और दृष्टिराग के प्रहाण को सम्यक्दृष्टि कहा गया है। यद्यपि कुछ विचारक यह कह सकते हैं कि बौद्धधर्म या दर्शन स्वयं में भी तो एक दृष्टि है। लेकिन यदि हम बौद्धधर्म का गम्भीरता से अध्ययन करें तो हमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बुद्ध का सन्देश किसी दृष्टि को अपनाना नहीं था, क्योंकि सभी दृष्टियाँ तृष्णा के ही, राग के ही रूप हैं और सत्य के एकांश का ग्रहण करती हैं। इन दृष्टियों से ऊपर उठना ही बुद्ध की धर्मदेशना का सार है। दृष्टिराग से ऊपर उठना ही दृष्टिनिरपेक्षता है और इसे ही हम धर्मनिरपेक्षता कह सकते हैं। यद्यपि यह एक निषेधात्मक प्रयास ही अधिक है, जैनों के अनेकान्त के समान विधायक प्रयास नहीं है। फिर भी बौद्धधर्म में सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की चर्चा हुई है किन्तु उसकी सम्यक्दृष्टि दृष्टिनिरपेक्षता या दृष्टिशून्यता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। बौद्धधर्म की दृष्टि में सभी दृष्टियां ऐकान्तिक होती हैं। वह यह मानता है कि आग्रह या एकांगीदृष्टि राग के ही रूप हैं और जो इस प्रकार के दृष्टिराग में रत रहता है वह सम्यक्दृष्टि को उपलब्ध नहीं होता। अपितु जहां एक ओर स्वंय दृष्टिराग के कारण बन्धन में पड़ा रहता है वहीं दूसरी ओर इसी दृष्टिराग के परिणामस्वरूप कलह और विवाद का कारण बनता है। इसके विपरीत जो मनुष्य दृष्टिपक्ष या आग्रह से ऊपर उठ जाता है, वह न तो विवाद में पड़ता है न बन्धन में। वह विश्वशान्ति का साधक होता है।

सुत्तनिपात में बुद्ध बहुत ही मार्मिक शब्दों में कहते है कि "जो अपनी दृष्टि का दृढ़ाग्रही हो दूसरो को मूर्ख मानता है, वह दूसरे धर्म को मूर्ख और अशुद्ध बतलाने वाला स्वयं ही कलह का आह्वान करता है। वह किसी धारणा या दृष्टि पर अवस्थित हो, उसके द्वारा संसार में विवाद या कलह उत्पन्न करता है। किन्तु जो सभी धारणाओं को त्याग देता है वह मनुष्य संसार में कलह नहीं करता है।"[१] क्योंकि दृष्टि राग बांधता है, जो बांधता है वह अन्यत्र से तोड़ता भी है और जो तोड़ेगा वह कलह और विनाश को आमन्त्रित करेगा। बुद्ध पुनः स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि साधारण मनुष्यों की जो कुछ दृष्टियाँ हैं, पण्डित उन सबमें नहीं पड़ता है। दृष्टि को न ग्रहण करने वाला आसक्तिरहित पण्डित क्या ग्रहण करेगा? बुद्ध के शब्दों में जो लोग अपने धर्म को परिपूर्ण और दूसरे के धर्म को हीन बताते हैं वे दूसरों की अवज्ञा (निन्दा) से हीन होकर धर्म में श्रेष्ठ नहीं हो सकते।[२] जो किसी दृष्टि विशेष को मानता है, जो किसी वादविशेष में आसक्त है वह मनुष्य शुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। यही कारण है कि बुद्ध के शब्दों में विवेकी ब्राह्मण दृष्टि की तृष्णा में नहीं पड़ता, वह जो कुछ भी दृष्टि, श्रुति या विचार है, उन सब पर विजयी होता है और दृष्टियों से पूर्णरूप से मुक्त हो संसार में लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धधर्म दृष्टिराग का निषेध करके इस बात का संदेश देता है कि व्यक्ति को साधना और आध्यात्म के क्षेत्र में किसी प्रकार के दुराग्रह से ग्रसित नहीं होना चाहिए । बौद्धधर्म की यह स्पष्ट धारणा है कि बिना दृष्टिराग को छोड़े कोई भी व्यक्ति न तो सम्यग्दृष्टि को प्राप्त हो सकता है और न निर्वाण के पथ का अनुगामी हो सकता है। इसीलिए बौद्धधर्म के सशक्त व्याख्याता विद्वान दार्शनिक नागार्जुन स्पष्ट शब्दों में कहते हैं - तत्त्व का साक्षात्कार दृष्टियों के घेरे से ऊपर उठकर ही किया जा सकता है, क्योंकि समग्र दृष्टियाँ (दर्शन) उसे दूषित ही करती हैं। इस प्रकार बौद्ध दर्शन का दृष्टिराग के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रहाण का सिद्धान्त धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। बुद्ध का सन्देश सदैव ही आग्रह और मतान्धता के घेरे से ऊपर उठने का रहा है क्योंकि वे यह मानते हैं कि सत्य का दर्शन आग्रह और मतान्धता से ऊपर उठकर ही हो सकता है।

बौद्ध दर्शन का विभज्यवाद का सिद्धान्त भी हमें यही सन्देश देता है कि सत्य का समग्ररूप से दर्शन करने के इच्छुक व्यक्ति को सत्य को ऐकान्तिक दृष्टि से नहीं, अपितु अनैकान्तिक दृष्टि से देखना होगा। बौद्ध परम्परा में सत्य को अनेक पहलुओं के साथ देखना ही विद्वता है। थेरगाथा में कहा गया है कि जो सत्य को एक ही पहलू से देखता है वह मूर्ख है, पंडित तो सत्य को अनेक पहलुओं से देखता है।[3] विवाद का जन्म एकांगी दृष्टि से होता है क्योंकि एकांगदर्शी ही आपस में झगड़ते हैं। जब हम सत्य को अनेक पहलुओं से देखते हैं तो निश्चय ही हमारे सामने विभिन्न पहलुओं के आधार पर विभिन्न रूप होते हैं और ऐसी स्थिति में हम किसी एक विचारसरणी में आबद्ध न होकर सत्य का व्यापक रूप में दर्शन करते हैं। इसीलिए सुत्तनिपात में बुद्ध कहते हैं कि मैं विवाद (आग्रह) के दो फल बताता हूँ - एक तो वह अपूर्ण और एकांगी होता है और दूसरे वह विग्रह और अशान्ति का कारण होता है।[4] निर्वाण जो कि हमारे जीवन का परम साध्य है वह तो निर्विवादता की भूमि पर स्थित है। इसलिए बुद्ध कहते हैं कि निर्वाण को निर्विवाद भूमि समझनेवाला साधक विवाद में न पड़े।[5] भगवान बुद्ध की दृष्टि में पक्षाग्रह या वाद-विवाद निर्वाणमार्ग के पथिक के कार्य नहीं हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि यह तो मल्लविद्या है। राजभोजन से पुष्ट पहलवान की तरह अपने प्रतिवादी को ललकारने वाले वादी को उस जैसे प्रतिवादी के पास भेजना चाहिए, क्योंकि मुक्त पुरुषों के पास विवादरूपी युद्ध का कोई कारण ही शेष नहीं है और जो अपने मत या दृष्टि को सत्य बताते हैं उनसे कहना चाहिए कि विवाद उत्पन्न होने पर तुम्हारे साथ बहस करने को यहां कोई नहीं है।[6] इस प्रकार बौद्धदर्शन इस बात को भी अनुचित मानता है कि हम केवल अपने मत की प्रशंसा और दूसरे के मत की निन्दा करते रहें। बुद्ध स्वंय कहते हैं कि शुद्धि यहीं है दूसरे वर्णों में नहीं है, ऐसा अपनी दृष्टि में अतिदृढ़ाग्रही व्यक्ति तैर्थिक (मिथ्यादृष्टि) है। इस प्रकार दृष्टिराग ही मिथ्यादृष्टि है और दृष्टिराग का प्रहाण ही सम्यग्दृष्टि है।

धार्मिक संघर्ष की नियन्त्रक तत्त्व प्रज्ञा

समग्र धार्मिक मतान्धता और संघर्ष इसीलिए होते हैं कि व्यक्ति धार्मिक सन्दर्भों में विचार और तर्क की अपेक्षा श्रद्धा के अधिक महत्त्व देते हैं। तर्क और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तन से रहित श्रद्धा अंधश्रद्धा होती है और ऐसी अंधश्रद्धा से युक्त व्यक्तियों का उपयोग तथाकथित धार्मिक नेता अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये कर लेते हैं। अत: धर्म के क्षेत्र में श्रद्धा का स्थान स्वीकृत करते हुए भी उसे विवेक या चिन्तन से रहित कर देना नहीं है। बौद्धधर्म ने सदैव ही श्रद्धा की अपेक्षा तर्क और प्रज्ञा को अधिक महत्त्व दिया है। आलारकलामसुत्त में बुद्ध स्पष्टरूप में कहते हैं कि हे कलाम! तुम मेरी बात को केवल इसलिए सत्य स्वीकार मत करो कि इनको कहने वाला व्यक्ति तुम्हारी आस्था या श्रद्धा का केन्द्र है।

अध्यात्म और साधना के क्षेत्र में प्रत्येक बात को तर्क की तराजू पर तौल कर और अनुभव की कसौटी पर कस कर ही स्वीकार करना चाहिए। बुद्ध अन्य विचारकों की वैचारिक स्वतंत्रता का कभी हनन नहीं करना चाहते। इसके विपरीत वे हमेशा कहते हैं कि जो कुछ हमने कहा है उसे अनुभव की कसौटी पर कसो और सत्य की तराजू पर तौलो, यदि वह सत्य लगता है तो उसे स्वीकार करो।

बुद्ध के शब्दों में हे कलाम! जब तुम आत्म अनुभव से जानलो कि ये बातें कुशल हैं, निर्दोष हैं, इनके आधार पर चलने से सुख होता है तभी इन्हें स्वीकार करो अन्यथा नहीं। बुद्ध आस्था प्रधान धर्म के स्थान पर तर्क प्रधान धर्म का व्याख्यान करते हैं और इस प्रकार के धार्मिक मतान्धता और वैचारिक दुराग्रहों से व्यक्ति को ऊपर उठाते हैं। उसे केवल शास्ता के प्रति आदर के कारण स्वीकार नहीं करना चाहिए। वस्तुत: धार्मिक जीवन में जब तक विवेक या प्रज्ञा को विश्वास या आस्था का नियन्त्रक नहीं माना जाएगा तब तक हम धार्मिक संघर्षों और धर्म के नाम पर खेली जानी वाली होलियों से मानवजाति को नहीं बचा सकेंगे। धर्म के लिए श्रद्धा आवश्यक है किन्तु उसे विवेक का अनुगामी होना चाहिए। यह आवश्यक है कि शास्त्र की सारी बातों और व्याख्याओं को विवेक की तराजू पर तौला जाये और युगीन सन्दर्भ में उनका मूल्यांकन किया जाये। जब तक यह नहीं होता तब तक धार्मिक जीवन में आई संकीर्णता का मिट पाना सम्भव नहीं। विवेक ही ऐसा तत्त्व है जो हमारी दृष्टि को उदार और व्यापक बना सकता है। श्रद्धा आवश्यक है, किन्तु उसे विवेक का अनुगामी होना चाहिए। आज आवश्यकता बौद्धिक धर्म की है और बुद्ध ने बौद्धिक धर्म का सन्देश देकर हमें धार्मिक मतान्धताओं और धार्मिक आग्रहों से ऊपर उठने का सन्देश दिया है।

बुद्ध का मध्यममार्ग धर्मनिरपेक्षता का आधार

बुद्ध ने अपने दर्शन को मध्यममार्ग की संज्ञा दी है। जिस प्रकार नदी की धारा कूलों में न उलझकर उनके मध्य से बह लेती है, उसी प्रकार बौद्धधर्म भी ऐकान्तिक दृष्टियों से बचकर अपनी यात्रा करता है। मध्यममार्ग का एक आशय यह भी है कि वह किसी भी दृष्टि को स्वीकार नहीं करता। सांसारिक सुखभोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और देहदण्डन की प्रक्रिया दोनों ही उसके लिए ऐकान्तिक है। एकान्तों के त्याग में ही मध्यम मार्ग की विशिष्टता है। मध्यममार्ग का अर्थ है - परस्पर विरोधी मतवादों में किसी एक ही पक्ष को स्वीकार न करना । बुद्ध का मध्यममार्ग अनैकान्तिक दृष्टि का उदाहरण है। यद्यपि वे केवल निषेधमुख से इतना ही कहते है कि हमें ऐकान्तिक दृष्टियों में नहीं उलझना चाहिए। धार्मिक निरपेक्षता का भी किसी सीमा तक यही आदर्श है कि हमें किसी एक धर्म विशेष या मतवाद विशेष में न उलझकर एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। बुद्ध के शब्दों में एकांशदर्शी ही आपस में झगड़ते और उलझते हैं। मध्यममार्ग का तात्पर्य है - विवादों से ऊपर उठना और इस अर्थ में वह किसी सीमा तक धर्मनिरपेक्षता का हामी है। बौद्धधर्म यह मानता है कि जीवन का मुख्य लक्ष्य तृष्णा की समाप्ति है। आसक्ति और अहं से ऊपर उठना ही सर्वोच्च आदर्श है। दृष्टिराग वैचारिक तृष्णा अथवा वैचारिक अहं का ही एक रूप है और जब तक वह उपस्थित है तब तक मध्यममार्ग की साधना सम्भव नहीं है। अत: मध्यममार्ग का साधक इन दृष्टिरागों से ऊपर उठकर कार्य करता है। जैसा कि बौद्ध दर्शन में कहा गया है कि पण्डित वही है जो उभय अन्तों का विवर्जन कर मध्य में स्थित रहता है। वस्तुत: माध्यस्थ दृष्टि ही धर्मनिरपेक्षता है।

बुद्ध का जीवन और धार्मिक सहिष्णुता

यदि हम बुद्ध के जीवन को देखें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे स्वयं किसी धर्म या साधना-पद्धति विशेष के आग्रही नहीं रहे हैं। उन्होंने अपनी साधना के प्रारम्भ में अनेक धर्मनायकों, विचारकों और साधकों से जीवन्त सम्पर्क स्थापित किया था और उनकी साधना पद्धतियों को अपनाया। उदकरामपुत्त आदि अनेक साधकों के सम्पर्क में वे आये और उनकी साधना पद्धतियों को सीखा। यह समस्त चर्चा पालि त्रिपिटक में आज भी उपलब्ध है। चाहे आत्मतोष न होने पर उन्होंने उनका बाद में त्याग किया हो फिर भी उनके मन में सभी साधकों के प्रति सदा आदरभाव रहा और ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी उनके मन में यह अभिलाषा रही कि अपने द्वारा उद्घाटित सत्य का बोध उन्हें करायें। यह दुर्भाग्य ही था कि पंचवर्गी भिक्षुओं को छोड़कर शेष सभी आचार्य उस काल तक कालकवलित हो चुके थे, फिर भी बुद्ध के द्वारा उनके प्रति प्रदर्शित आदरभाव उनकी उदार और व्यापक दृष्टि का परिचायक है। यद्यपि बौद्धधर्म में अन्य तीर्थिकों के रूप में पूर्णकश्यप, निगंठनाटपुत्त, अजितकेशकंबलि, मंखलिगोशाल आदि की समालोचना हमें उपलब्ध होती है किन्तु ऐसा लगता है कि यह सब परवर्ती साम्प्रदायिक अभिनिवेश का ही परिणाम है। बुद्ध जैसा महामनस्वी इन वैचारिक दुराग्रहों और अभिनिवेशों से युक्त रहा हो ऐसा सोचना सम्भव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः बौद्धधर्म मूलतः एक कर्मकाण्डी धर्म न होकर एक नैतिक आचार पद्धति है। एक नैतिक आचार पद्धति के रूप में वह धार्मिक दुराग्रहों और अभिनिवेशों से मुक्त रह सकता है। उसके अनुसार तृष्णा की समाप्ति ही जीवन का परम श्रेय है और तृष्णा की परिसमाप्ति के समग्र प्रयत्न किसी एक धर्म परम्परा से सम्बद्ध नहीं किये जो सकते। वे सभी उपाय जो तृष्णा के भेदन में उपयोगी हों बौद्धधर्म को स्वीकार हैं। शीलवान, समाधिवान और प्रज्ञावान होना बौद्ध विचारणा का मन्तव्य है किन्तु इसे हम केवल बौद्धों का धर्म नहीं कह सकते। यह धर्म का सार्वजनीन और सार्वकालिक स्वरूप है और बौद्धधर्म इसे अपनाकर व्यापक और उदार दृष्टि का ही परिचायक बनता है। बौद्धधर्म में धर्म (साधना-पद्धति) एक साधन है वह पकड़कर रखने के लिए नहीं है और उसे भी छोड़ना ही है, अतः वह साधना के किसी विशिष्ट मार्ग का आग्रही नहीं है।

उपसंहार

वस्तुतः वैयक्तिक भिन्नताओं के आधार पर साधनागत और आचारगत भिन्नताएं स्वाभाविक हैं। अतः मानवीय एकता और मानवीय संघर्षों की समाप्ति के लिए एक धर्म का नारा न केवल अशक्य है अपितु अस्वाभाविक भी है। जब तक व्यक्तियों में रुचिगत और स्वभावगत भेद है तब तक साधनागत भेद भी अपरिहार्य रूप से बने रहेंगे। इसीलिए तो बुद्ध ने किसी एक यान का उपदेश न देकर विविध यानों (धर्म मार्गों) का उपदेश दिया था। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम इन साधनागत भेदों को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में समन्वित कर तथा उनकी उपादेयता को स्वीकार कर एक ऐसी जीवनदृष्टि का निर्माण करें जो सभी की सापेक्षिक मूल्यवत्ता को स्वीकार करते हुए मानव कल्याण में सहायक बन सके।

सन्दर्भः

१. सुत्तनिपात ५०/१६-१७

२. सुत्तनिपात ५१/३, १०-११, १६-२०

३. थेरगाथा १/१०६

४. उदान ६/४

५. सुत्तनिपात ५१/२

६. सुत्तनिपात ४६/८-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org